षष्ठ सोपान- रावण मूर्च्छा, रावण यज्ञ विध्वंस, राम-रावण युद्ध

दोहा :

*** देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर। आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर॥83॥

भावार्थ:-

यह देखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी कठोर वचन बोलते हुए दौड़े।हनुमान्‌जी के आते ही रावण ने उन पर अत्यंत भयंकर घूँसे का प्रहार किया॥83॥ चौपाई:

*** जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा॥ मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥1॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी घुटने टेककर रह गए, पृथ्वी पर गिरे नहीं और फिर क्रोध से भरे हुए संभलकर उठे। हनुमान्‌जी ने रावण को एक घूँसा मारा। वह ऐसा गिर पड़ा जैसे वज्र की मार से पर्वत गिरा हो॥1॥

*** मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥ धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही॥2॥

भावार्थ:-

मूर्च्छा भंग होने पर फिर वह जागा और हनुमान्‌जी के बड़े भारी बल को सराहने लगा। (हनुमान्‌जी ने कहा-) मेरे पौरुष को धिक्कार है, धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है, जो हे देवद्रोही! तू अब भी जीता रह गया॥2॥

*** अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥ कह रघुबीर समुझु जियँ भ्राता। तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता॥3॥

भावार्थ:-

ऐसा कहकर और लक्ष्मणजी को उठाकर हनुमान्‌जी श्री रघुनाथजी के पास ले आए। यह देखकर रावण को आश्चर्य हुआ। श्री रघुवीर ने (लक्ष्मणजी से) कहा- हे भाई! हृदय में समझो, तुम काल के भी भक्षक और देवताओं के रक्षक हो॥3॥

*** सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सकति कराला॥ पुनि कोदंड बान गहि धाए। रिपु सन्मुख अति आतुर आए॥4॥

भावार्थ:-

ये वचन सुनते ही कृपालु लक्ष्मणजी उठ बैठे। वह कराल शक्ति आकाश को चली गई। लक्ष्मणजी फिर धनुष-बाण लेकर दौड़े और बड़ी शीघ्रता से शत्रु के सामने आ पहुँचे॥4॥

छंद :

*** आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो। गिर्‌यो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो॥ सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो। रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो॥

भावार्थ:-

फिर उन्होंने बड़ी ही शीघ्रता से रावण के रथ को चूर-चूर कर और सारथी को मारकर उसे (रावण को) व्याकुल कर दिया। सौ बाणों से उसका हृदय बेध दिया, जिससे रावण अत्यंत व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब दूसरा सारथी उसे रथ में डालकर तुरंत ही लंका को ले गया। प्रताप के समूह श्री रघुवीर के भाई लक्ष्मणजी ने फिर आकर प्रभु के चरणों में प्रणाम किया। दोहा:

*** उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य। राम बिरोध बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य॥84॥

भावार्थ:-

वहाँ (लंका में) रावण मूर्छा से जागकर कुछ यज्ञ करने लगा। वह मूर्ख और अत्यंत अज्ञानी हठवश श्री रघुनाथजी से विरोध करके विजय चाहता है॥84॥

चौपाई :

*** इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई॥ नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा॥1॥

भावार्थ:-

यहाँ विभीषणजी ने सब खबर पाई और तुरंत जाकर श्री रघुनाथजी को कह सुनाई कि हे नाथ! रावण एक यज्ञ कर रहा है। उसके सिद्ध होने पर वह अभागा सहज ही नहीं मरेगा॥1॥

*** पठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर॥ प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए॥2।

भावार्थ:-

हे नाथ! तुरंत वानर योद्धाओं को भेजिए, जो यज्ञ का विध्वंस करें, जिससे रावण युद्ध में आवे। प्रातःकाल होते ही प्रभु ने वीर योद्धाओं को भेजा। हनुमान् और अंगद आदि सब (प्रधान वीर) दौड़े॥2॥

*** कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन असंका॥ जग्य करत जबहीं सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा॥3॥

भावार्थ:-

वानर खेल से ही कूदकर लंका पर जा चढ़े और निर्भय होकर रावण के महल में जा घुसे। ज्यों ही उसको यज्ञ करते देखा, त्यों ही सब वानरों को बहुत क्रोध हुआ॥3॥

*** रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा। अस कहि अंगद मारा लाता।

चितव न सठ स्वारथ मन राता॥4॥

भावार्थ:-

(उन्होंने कहा-) अरे ओ निर्लज्ज! रणभूमि से घर भाग आया और यहाँ आकर बगुले का सा ध्यान लगाकर बैठा है? ऐसा कहकर अंगद ने लात मारी। पर उसने इनकी ओर देखा भी नहीं, उस दुष्ट का मन स्वार्थ में अनुरक्त था॥4॥ छंद :

*** नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं। धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं॥ तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई। एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई॥

भावार्थ:-

जब उसने नहीं देखा, तब वानर क्रोध करके उसे दाँतों से पकड़कर (काटने और) लातों से मारने लगे। स्त्रियों को बाल पकड़कर घर से बाहर घसीट लाए, वे अत्यंत ही दीन होकर पुकारने लगीं। तब रावण काल के समान क्रोधित होकर उठा और वानरों को पैर पकड़कर पटकने लगा। इसी बीच में वानरों ने यज्ञ विध्वंस कर डाला, यह देखकर वह मन में हारने लगा। (निराश होने लगा)।

दोहा :

*** जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास। चलेउ निसाचर कुरद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस॥85॥

भावार्थ:-

यज्ञ विध्वंस करके सब चतुर वानर रघुनाथजी के पास आ गए। तब रावण जीने की आश छोड़कर क्रोधित होकर चला॥85॥

चौपाई :

*** चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर॥ भयउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना॥1॥

भावार्थ:-

चलते समय अत्यंत भयंकर अमंगल (अपशकुन) होने लगे। गीध उड़-उड़कर उसके सिरों पर बैठने लगे, किन्तु वह काल के वश था, इससे किसी भी अपशकुन को नहीं मानता था। उसने कहा- युद्ध का डंका बजाओ॥1॥

*** चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा॥ प्रभु सन्मुख धाए खल कैसें। सलभ समूह अनल कहँ जैसें॥2॥

भावार्थ:-

निशाचरों की अपार सेना चली। उसमें बहुत से हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदल हैं। वे दुष्ट प्रभु के सामने कैसे दौड़े, जैसे पतंगों के समूह अग्नि की ओर (जलने के लिए) दौड़ते हैं॥।2॥

*** इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही। दारुन बिपति हमहि एहिं दीन्ही॥ अब जनि राम खेलावहु एही।

अतिसय दुखित होति बैदेही॥3॥

भावार्थ:-

इधर देवताओं ने स्तुति की कि हे श्री रामजी! इसने हमको दारुण दुःख दिए हैं। अब आप इसे (अधिक) न खेलाइए। जानकीजी बहुत ही दुःखी हो रही हैं॥3॥

दोहा :

*** देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना॥ जटा जूट दृढ़ बाँधें माथे। सोहहिं सुमन बीच बिच गाथे॥4॥

भावार्थ:-

देवताओं के वचन सुनकर प्रभु मुस्कुराए। फिर श्री रघुवीर ने उठकरबाण सुधारे। मस्तक पर जटाओं के जूड़े को कसकर बाँधे हुए हैं उसके बीच-बीच में पुष्प गूँथे हुए शोभित हो रहे हैं॥4॥

*** अरुन नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचनाभिरामा॥ कटितट परिकर कस्यो निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा॥5॥

भावार्थ:-

लाल नेत्र और मेघ के समान श्याम शरीर वाले और संपूर्ण लोकों के नेत्रों को आनंद देने वाले हैं। प्रभु ने कमर में फेंटा तथा तरकस कस लिया और हाथ में कठोर शार्ग धनुष ले लिया॥5॥ छंद :

*** सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो। भुजदंड पीनमनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो॥ कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे। ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥

भावार्थ:-

प्रभु ने हाथ में शार्ग धनुष लेकर कमर में बाणों की खान (अक्षय) सुंदर तरकस कस लिया। उनके भुजदण्ड पुष्ट हैं और मनोहर चौड़ी छाती परब्राह्मण (भृगुजी) के चरण का चिह्न शोभित है। तुलसीदासजी कहते हैं, ज्यों ही प्रभु धनुष-बाण हाथ में लेकर फिराने लगे, त्यों ही ब्रह्माण्ड, दिशाओं के हाथी, कच्छप, शेषजी, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत सभी डगमगा उठे।

दोहा :

*** सोभा देखि हरषि सुर बरषहिं सुमन अपार। जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार॥86॥

भावार्थ:-

(भगवान् की) शोभा देखकर देवता हर्षित होकर फूलों की अपार वर्षा करने लगे और शोभा, शक्ति और गुणों के धाम करुणानिधान प्रभु की जय हो, जय हो, जय हो (ऐसा पुकारने लगे)॥86॥

चौपाई :

*** एहीं बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अति घनी॥ देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। प्रलयकाल के जनु घन घट्टा॥1॥

भावार्थ:-

इसी बीच में निशाचरों की अत्यंत घनी सेना कसमसाती हुई (आपस में टकराती हुई) आई। उसे देखकर वानर योद्धा इस प्रकार (उसके) सामने चले जैसे प्रलयकाल के बादलों के समूह हों॥1॥

*** बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दहँ दिसि दामिनीं दमंकहिं॥ गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा॥2॥

भावार्थ:-

बहुत से कृपाल और तलवारें चमक रही हैं। मानो दसों दिशाओं में बिजलियाँ चमक रही हों। हाथी, रथ और घोड़ों का कठोर चिंग्घाड़ ऐसा लगता है मानो बादल भयंकर गर्जन कर रहे हों॥2॥

*** कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इंद्रधनु उए सुहाए॥ उठइ धूरि मानहुँ जलधारा। बान बुंद भै बृष्टि अपारा॥3॥

भावार्थ:-

वानरों की बहुत सी पूँछें आकाश में छाई हुई हैं। (वे ऐसी शोभा दे रही हैं) मानो सुंदर इंद्रधनुष उदय हुए हों। धूल ऐसी उठ रही है मानो जल कीधारा हो। बाण रूपी बूँदों की अपार वृष्टि हुई॥3॥

*** दुहुँ दिसि पर्बत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा॥ रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भै निसिचर समुदाई॥4॥

भावार्थ:-

दोनों ओर से योद्धा पर्वतों का प्रहार करते हैं। मानो बारंबार वज्रपात हो रहा हो। श्री रघुनाथजी ने क्रोध करके बाणों की झड़ी लगा दी, (जिससे) राक्षसों की सेना घायल हो गई॥4॥

*** लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं॥ स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी। सोनित सरि कादर भयकारी॥5॥

भावार्थ:-

बाण लगते ही वीर चीत्कार कर उठते हैं और चक्कर खा-खाकर जहाँ-तहाँ पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। उनके शरीर से ऐसे खून बह रहा है मानो पर्वत के भारी झरनों से जल बह रहा हो। इस प्रकार डरपोकों को भय उत्पन्न करने वाली रुधिर की नदी बह चली॥5॥ छंद :

*** कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी। दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी॥ जलजंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने। सरसक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥

भावार्थ:-

डरपोकों को भय उपजाने वाली अत्यंत अपवित्र रक्त की नदी बह चली। दोनों दल उसके दोनों किनारे हैं। रथ रेत है और पहिए भँवर हैं। वह नदी बहुतभयावनी बह रही है। हाथी, पैदल, घोड़े, गदहे तथा अनेकों सवारियाँ ही, जिनकी गिनती कौन करे, नदी के जल जन्तु हैं। बाण, शक्ति और

तोमर सर्प हैं, धनुष तरंगें हैं और ढाल बहुत से कछुवे हैं।

दोहा :

*** बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन। कादर देखि डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चेन॥87॥

भावार्थ:-

वीर पृथ्वी पर इस तरह गिर रहे हैं, मानो नदी-किनारे के वृक्ष ढह रहे हों। बहुत सी मज्जा बह रही है, वही फेन है। डरपोक जहाँ इसे देखकर डरते हैं, वहाँ उत्तम योद्धाओं के मन में सुख होता है॥87॥

चौपाई :

*** मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥ काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं॥1॥

भावार्थ:-

भूत, पिशाच और बेताल, बड़े-बड़े झोंटों वाले महान् भयंकर झोटिंग और प्रमथ (शिवगण) उस नदी में स्नान करते हैं। कौए और चील भुजाएँ लेकर उड़ते हैं और एक-दूसरे से छीनकर खा जाते हैं॥1॥

*** एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई॥ कहँरत भट घायल तट गिरे। जहँ तहँ मनहुँ अर्धजल परे॥2॥

भावार्थ:-

एक (कोई) कहते हैं, अरे मूर्खों! ऐसी सस्ती (बहुतायत) है, फिर भी तुम्हारी दरिद्रता नहीं जाती? घायल योद्धा तट पर पड़े कराह रहे हैं, मानो जहाँ-तहाँ अर्धजल (वे व्यक्ति जो मरने के समय आधे जल में रखे जाते हैं) पड़े हों॥2॥

*** खैचहिं गीध आँत तट भए। जनु बंसी खेलत चित दए॥ बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥3॥

भावार्थ:-

गीध आँतें खींच रहे हैं, मानो मछली मार नदी तट पर से चित्त लगाए हुए (ध्यानस्थ होकर) बंसी खेल रहे हों (बंसी से मछली पकड़ रहे हों)। बहुतसे योद्धा बहे जा रहे हैं और पक्षी उन पर चढ़े चले जा रहे हैं। मानो वे नदी में नावरि (नौका क्रीड़ा) खेल रहे हों॥3॥

*** जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं। भूति पिसाच बधू नभ नंचहिं॥ भट कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना बिधि गावहिं॥4॥

भावार्थ:-

योगिनियाँ खप्परों में भर-भरकर खून जमा कर रही हैं। भूत-पिशाचों की स्त्रियाँ आकाश में नाच रही हैं। चामुण्डाएँ योद्धाओं की खोपड़ियों का करताल बजा रही हैं और नाना प्रकार से गा रही

हैं॥4॥

*** जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं॥कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं। सीस परे महि जय जय बोल्लहिं॥5॥

भावार्थ:-

गीदड़ों के समूह कट-कट शब्द करते हुए मुरदों को काटते खाते, हुआँ-हुआँ करते और पेट भर जाने पर एक-दूसरे को डाँटते हैं। करोड़ों धड़ बिना सिर के घूम रहे हैं और सिर पृथ्वी पर पड़े जय-जय बोल रहे है॥5॥ छंद :

*** बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं। खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं॥ बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए। संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरन्हि हए॥

भावार्थ:-

मुण्ड (कटे सिर) जय-जय बोल बोलते हैं और प्रचण्ड रुण्ड (धड़) बिना सिर के दौड़ते हैं। पक्षी खोपड़ियों में उलझ-उलझकर परस्पर लड़े मरते हैं, उत्तम योद्धा दूसरे योद्धाओं को ढहा रहे हैं। श्री रामचंद्रजी बल से दर्पित हुए वानर राक्षसों के झुंडों को मसले डालते हैं। श्री रामजी के बाण समूहों से मरे हुए योद्धा लड़ाई के मैदान में सो रहे हैं।

दोहा :

*** रावन हृदयँ बिचारा भा निसिचर संघार। मैं अकेल कपि भालु बहु माया करौं अपार॥88॥

भावार्थ:-

रावण ने हृदय में विचारा कि राक्षसों का नाश हो गया है। मैं अकेला हूँ और वानर-भालू बहुत हैं इसलिए मैं अब अपार माया रचूँ॥88॥

इंद्र का श्री रामजी के लिए रथ भेजना, राम-रावण युद्ध

चौपाई :

*** देवन्ह प्रभुहि पयादें देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेषा॥ सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा॥1॥

भावार्थ:-

देवताओं ने प्रभु को पैदल (बिना सवारी के युद्ध करते) देखा, तो उनके हृदय में बड़ा भारी क्षोभ (दुःख) उत्पन्न हुआ। (फिर क्या था) इंद्र ने तुरंत अपना रथ भेज दिया। (उसका सारथी) मातलि हर्ष के साथ उसे ले आया॥1॥

*** तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा॥ चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गतिकारी॥2॥

भावार्थ:-

उस दिव्य अनुपम और तेज के पुंज (तेजोमय) रथ पर कोसलपुरी के राजा श्री रामचंद्रजी हर्षित होकर चढ़े। उसमें चार चंचल, मनोहर, अजर, अमर और मन की गति के समान शीघ्र चलने वाले (देवलोक के) घोड़े जुते थे॥2॥

*** रथारूढ़ रघुनाथहि देखी। धाए कपि बलु पाइ बिसेषी॥ सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी॥3॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी को रथ पर चढ़े देखकर वानर विशेष बल पाकर दौड़े। वानरों की मार सही नहीं जाती। तब रावण ने माया फैलाई॥3॥

*** सो माया रघुबीरहि बाँची। लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची॥ देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसलधनी॥4॥

भावार्थ:-

एक श्री रघुवीर के ही वह माया नहीं लगी। सब वानरों ने और लक्ष्मणजी ने भी उस माया को सच मान लिया। वानरों ने राक्षसी सेना में भाई लक्ष्मणजी सहित बहुत से रामों को देखा॥4॥

छंद :

*** बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे। जनु चित्र लिखितसमेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे॥ निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी। माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मर्कट अनी॥

भावार्थ:-

बहुत से राम-लक्ष्मण देखकर वानर-भालू मन में मिथ्या डर से बहुत हीडर गए। लक्ष्मणजी सहित वे मानो चित्र लिखे से जहाँ के तहाँ खड़े देखने लगे। अपनी सेना को आश्चर्यचकित देखकर कोसलपति भगवान् हरि (दुःखों के हरने वाले श्री रामजी) ने हँसकर धनुष पर बाण चढ़ाकर, पल भर में सारी माया हर ली। वानरों की सारी सेना हर्षित हो गई।

दोहा :

*** बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर। द्वंदजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर॥89॥

भावार्थ:-

फिर श्री रामजी सबकी ओर देखकर गंभीर वचन बोले- हे वीरों! तुम सब बहुत ही थक गए हो, इसलिए अब (मेरा और रावण का) द्वंद्व युद्ध देखो॥89॥

चौपाई :

*** अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र चरन पंकज सिरु नावा॥ तब लंकेस क्रोध उर छावा।

गर्जत तर्जत सम्मुख धावा॥1॥

भावार्थ:-

ऐसा कहकर श्री रघुनाथजी ने ब्राह्मणों के चरणकमलों में सिर नवाया और फिर रथ चलाया। तब रावण के हृदय में क्रोध छा गया और वह गरजता तथा ललकारता हुआ सामने दौड़ा॥1॥

*** जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं॥ रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदीखाना॥2॥

भावार्थ:-

(उसने कहा-) अरे तपस्वी! सुनो, तुमने युद्ध में जिन योद्धाओं को जीता है, मैं उनके समान नहीं हूँ। मेरा नाम रावण है, मेरा यश सारा जगत् जानता है, लोकपाल तक जिसके कैद खाने में पड़े हैं॥2॥

*** खर दूषन बिराध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा॥ निसिचर निकर सुभट संघारेहु। कुंभकरन घननादहि मारेहु॥3॥

भावार्थ:-

तुमने खर, दूषण और विराध को मारा! बेचारे बालि का व्याध की तरह वध किया। बड़े-बड़े राक्षस योद्धाओं के समूह का संहार किया और कुंभकर्ण तथा मेघनाद को भी मारा॥3॥

*** आजु बयरु सबु लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिं जाही॥ आजु करउँ खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले॥4॥

भावार्थ:-

अरे राजा! यदि तुम रण से भाग न गए तो आज मैं (वह) सारा वैर निकाल लूँगा। आज मैं तुम्हें निश्चय ही काल के हवाले कर दूँगा। तुम कठिन रावण के पाले पड़े हो॥4॥

*** सुनि दुर्बचन कालबस जाना। बिहँसि बचन कह कृपानिधाना॥ सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥5॥

भावार्थ:-

रावण के दुर्वचन सुनकर और उसे कालवश जान कृपानिधान श्री रामजी ने हँसकर यह वचन कहा- तुम्हारी सारी प्रभुता, जैसा तुम कहते हो, बिल्कुल सच है। पर अब व्यर्थ बकवाद न करो, अपना पुरुषार्थ दिखलाओ॥5॥

छंद :

*** जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा। संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥ एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं। एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

भावार्थ:-

व्यर्थ बकवाद करके अपने सुंदर यश का नाश न करो। क्षमा करना, तुम्हें नीति सुनाता हूँ सुनो!

संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं- पाटल (गुलाब), आम और कटहल के समान। एक (पाटल) फूल देते हैं, एक (आम) फूल और फल दोनों देते हैं एक (कटहल) में केवल फल ही लगते हैं। इसी प्रकार (पुरुषों में) एक कहते हैं (करते नहीं), दूसरे कहते और करते भी हैं और एक (तीसरे) केवल करते हैं, पर वाणी से कहते नहीं॥

दोहा :

*** राम बचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ग्यान। बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान॥90॥

भावार्थ:-

श्री रामजी के वचन सुनकर वह खूब हँसा (और बोला-) मुझे ज्ञान सिखाते हो? उस समय वैर करते तो नहीं डरे, अब प्राण प्यारे लग रहे हैं॥90॥

चौपाई :

***कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाँड़ै सर॥॥ नानाकार सिलीमुख धाए। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाए॥1॥

भावार्थ:-

दुर्वचन कहकर रावण क्रुद्ध होकर वज्र के समान बाण छोड़ने लगा। अनेकों आकार के बाण दौड़े और दिशा, विदिशा तथा आकाश और पृथ्वी में, सब जगह छा गए॥1॥

***पावक सर छाँड़ेउ रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा॥ छाड़िसि तीब्र सक्ति खिसिआई। बान संग प्रभु फेरि चलाई॥2॥

भावार्थ:-

श्री रघुवीर ने अग्निबाण छोड़ा, (जिससे) रावण के सब बाण क्षणभर में भस्म हो गए। तब उसने खिसियाकर तीक्ष्ण शक्ति छोड़ी, (किन्तु) श्री रामचंद्रजी ने उसको बाण के साथ वापस भेज दिया॥2॥

*** कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै॥ निफल होहिं रावन सर कैसें। खल के सकल मनोरथ जैसें॥3॥

भावार्थ:-

वह करोड़ों चक्र और त्रिशूल चलाता है, परन्तु प्रभु उन्हें बिना हीपरिश्रम काटकर हटा देते हैं। रावण के बाण किस प्रकार निष्फल होते हैं, जैसे दुष्ट मनुष्य के सब मनोरथ!॥3॥

*** तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि॥ राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा॥4॥

भावार्थ:-

तब उसने श्री रामजी के सारथी को सौ बाण मारे। वह श्री रामजी की जय पुकारकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। श्री रामजी ने कृपा करके सारथी को उठाया। तब प्रभु अत्यंत क्रोध को प्राप्त हुए॥4॥

छंद :

*** भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसम्मसे। कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥ मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे। चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

भावार्थ:-

युद्ध में शत्रु के विरुद्ध श्री रघुनाथजी क्रोधित हुए तब तरकस में बाण कसमसाने लगे (बाहर निकलने को आतुर होने लगे)। उनके धनुष का अत्यंत प्रचण्ड शब्द (टंकार) सुनकर मनुष्यभक्षी सब राक्षस वातग्रस्त हो गए (अत्यंत भयभीत हो गए)। मंदोदरी का हृदय काँप उठा, समुद्र, कच्छप, पृथ्वी और पर्वत डर गए। दिशाओं के हाथी पृथ्वी को दाँतों से पकड़कर चिग्घाड़ने लगे। यह कौतुक देखकर देवता हँसे।

दोहा :

*** तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल। राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल॥91॥

भावार्थ:-

धनुष को कान तक तानकर श्री रामचंद्रजी ने भयानक बाण छोड़े। श्री रामजी के बाण समूह ऐसे चले मानो सर्प लहलहाते (लहराते) हुए जा रहे हों॥91॥

चौपाई :

*** चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा॥ रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बल थाका॥1॥

भावार्थ:-

बाण ऐसे चले मानो पंख वाले सर्प उड़ रहे हों। उन्होंने पहले सारथी और घोड़ों को मार डाला। फिर रथ को चूर-चूर करके ध्वजा और पताकाओं को गिरा दिया। तब रावण बड़े जोर से गरजा, पर भीतर से उसका बल थक गया था॥1॥

*** तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना॥ बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के॥2॥

भावार्थ:-

तुरंत दूसरे रथ पर चढ़कर खिसियाकर उसने नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र छोड़े। उसके सब उद्योग वैसे ही निष्फल हो गए, जैसे परद्रोह में लगे हुए चित्त वाले मनुष्य के होते हैं॥2॥

*** तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा॥ तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाँड़े सायक॥3॥

भावार्थ:-

तब रावण ने दस त्रिशूल चलाए और श्री रामजी के चारों घोड़ों को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया।

घोड़ों को उठाकर श्री रघुनाथजी ने क्रोध करके धनुष खींचकर बाण छोड़े॥3॥

*** रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी॥ दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गए चले रुधिर पनारे॥4॥

भावार्थ:-

रावण के सिर रूपी कमल वन में विचरण करने वाले श्री रघुवीर के बाण रूपी भ्रमरों की पंक्ति चली। श्री रामचंद्रजी ने उसके दसों सिरों में दस-दस बाण मारे, जो आर-पार हो गए और सिरों से रक्त के पनाले बह चले॥4॥

*** स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना॥ तीस तीर रघुबीर पबारे। भुजन्हि समेत सीस महि पारे॥5॥

भावार्थ:-

रुधिर बहते हुए ही बलवान् रावण दौड़ा। प्रभु ने फिर धनुष पर बाण संधान किया। श्री रघुवीर ने तीस बाण मारे और बीसों भुजाओं समेत दसों सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिए॥5॥

*** काटतहीं पुनि भए नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने॥ प्रभु बहु बार बाहु सिर हए। कटत झटिति पुनि नूतन भए॥6॥

भावार्थ:-

(सिर और हाथ) काटते ही फिर नए हो गए। श्री रामजी ने फिर भुजाओं और सिरों को काट गिराया। इस तरह प्रभु ने बहुत बार भुजाएँ और सिर काटे परन्तु काटते ही वे तुरंत फिर नए हो गए॥6॥

*** पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा॥ रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू॥7॥

भावार्थ:-

प्रभु बार-बार उसकी भुजा और सिरों को काट रहे हैं, क्योंकि कोसलपति श्री रामजी बड़े कौतुकी हैं। आकाश में सिर और बाहु ऐसे छा गए हैं, मानो असंख्य केतु और राहु हों॥7॥ छंद :

*** जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं। रघुबीर तीक्ष्नचंड लागहिं भूमि गिरत न पावहीं॥ एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं। जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं॥

भावार्थ:-

मानो अनेकों राहु और केतु रुधिर बहाते हुए आकाश मार्ग से दौड़ रहे हों। श्री रघुवीर के प्रचण्ड बाणों के (बार-बार) लगने से वे पृथ्वी पर गिरने नहीं पाते। एक-एक बाण से समूह के समूह सिर छिदे हुए आकाश में उड़ते ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो सूर्य की किरणें क्रोध करके जहाँ-तहाँ राहुओं को पिरो रही हों।

दोहा :

*** जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि होहिं अपार। सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार॥92॥

भावार्थ:-

जैसे-जैसे प्रभु उसके सिरों को काटते हैं, वैसे ही वैसे वे अपार होते जाते हैं। जैसे विषयों का सेवन करने से काम (उन्हें भोगने की इच्छा) दिन-प्रतिदिन नया-नया बढ़ता जाता है॥92॥

चौपाई :

*** दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी॥ गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धायउ दसहु सरासन तानी॥1॥

भावार्थ:-

सिरों की बाढ़ देखकर रावण को अपना मरण भूल गया और बड़ा गहरा क्रोध हुआ। वह महान् अभिमानी मूर्ख गरजा और दसों धनुषों को तानकर दौड़ा॥1॥

*** समर भूमि दसकंधर कोप्यो। बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो॥ दंड एक रथ देखि न परेउ। जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ॥2॥

भावार्थ:-

रणभूमि में रावण ने क्रोध किया और बाण बरसाकर श्री रघुनाथजी के रथको ढँक दिया। एक दण्ड (घड़ी) तक रथ दिखलाई न पड़ा, मानो कुहरे में सूर्यछिप गया हो॥2॥

*** हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा॥ सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे॥3॥

भावार्थ:-

जब देवताओं ने हाहाकार किया, तब प्रभु ने क्रोध करके धनुष उठाया औरशत्रु के बाणों को हटाकर उन्होंने शत्रु के सिर काटे और उनसे दिशा, विदिशा, आकाश और पृथ्वी सबको पाट दिया॥3॥

*** काटे सिर नभ मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं॥ कहँ लछिमन सुग्रीव कपीसा। कहँ रघुबीर कोसलाधीसा॥4॥

भावार्थ:-

काटे हुए सिर आकाश मार्ग से दौड़ते हैं और जय-जय की ध्वनि करके भय उत्पन्न करते हैं। 'लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीव कहाँ हैं? कोसलपति रघुवीर कहाँ हैं?'॥4॥ छंद :

*** कहँ रामु कहि सिर निकर धाए देखि मर्कट भजि चले। संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले॥ सिर मालिका कर कालिका गहि बृंद बृंदन्हि बहु मिलीं। करि रुधिर सरि मज्जनु मनहुँ संग्राम बट पूजन चलीं॥

भावार्थ:-

'राम कहाँ हैं?' यह कहकर सिरों के समूह दौड़े, उन्हें देखकर वानर भाग चले। तब धनुष सन्धान

करके रघुकुलमणि श्री रामजी ने हँसकर बाणों से उन सिरों को भलीभाँति बेध डाला। हाथों में मुण्डों की मालाएँ लेकर बहुत सी कालिकाएँ झुंड की झुंड मिलकर इकट्ठी हुईं और वे रुधिर की नदी में स्नान करके चलीं। मानो संग्राम रूपी वटवृक्ष की पूजा करने जा रही हों।